Chapter-6

षष्टम् अध्याय

"सन् १९७१ ई. से लेकर १९९० ई. के मध्य भाषा एवं शिल्प शैली का वर्णन"

भाषागत विस्तार एवं शिल्प शैली

भाषा 'उपन्यास' की प्रकृति और सम्भावनाओं को व्यक्त करने वाली एकमात्र शक्ति है। साहित्य विधाओं में उपन्यास की विशिष्ट स्थिति इस बात से जानी जाती है, कि उसकी भाषा क्या थी? भारत जैसे विशाल तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता वाले देश में आधी शताब्दी के दौरान उत्पन्न हुई परिस्थितियों, संघर्षों, निराशाओं तथा आशाओं को सही रूप में व्यक्त करने वाली 'भाषा' ही है। हिन्दी उपन्यास साहित्य का एक बडा हिस्सा उन ग्रामीण अँचलों से सम्बद्ध है, जहाँ के लोग परिनिष्ठित हिन्दी बोलते हैं। उनकी अपनी-अपनी लोक भाषाएँ हैं, जिनमें साहित्य की भी रचना होती है। इन अँचलों की सच्चाई का चित्रण करते समय वहाँ की भाषा की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यही कारण है, कि ग्रामीण अँचलों पर आधारित उपन्यासों की भाषा टकसाली या शुद्ध मानक हिन्दी न होकर अँचल विशेष की भाषा से ओतप्रोत होती है।

'नार्गाजुन' और 'फणीश्वरनाथ रेणू' जब बिहार के मिथिलाँचल के जीवन का अंकन करते हैं, तो वे परिनिष्ठित हिन्दी में मैथिली का पात्रों की प्रकृति के अनुसार मिश्रण करते हैं और जब 'विवेकी राय', 'रामदरश मिश्र', 'शिवप्रसाद सिंह', 'राही मासूम रजा' उत्तर प्रदेश के पूर्वाचँल क्षेत्र को अपने उपन्यासों का विषय बनाते हैं, तो वे टकसाली हिन्दी को भोजपुरी शब्दों, मुहावरों से युक्त करके उसे एक नया अन्दाज प्रदान करते हैं। 'श्री लाल शुक्ल', 'कामता नाथ', 'अमृतलाल नागर' या 'कमलाकान्त त्रिपाठी' अवध क्षेत्र को अपने उपन्यास का विषय बनाते हैं, तो हिन्दी में अवधी भाषा का मिश्रण करते हैं। 'शैलेश मटियानी' और 'पंकज बिष्ट' अपने उपन्यासों में पहाडी जीवन का अंकन करते हैं, तो पहाडी भाषा को नहीं छोड पाते। 'यशपाल', 'भीष्म साहनी', 'कृष्णा सोबती', 'जगदीशचन्द्र' आदि ने पंजाबी जीवन का अंकन किया है तथा इसके साथ-साथ पंजाबी भाषा को भी प्रमुखता दी है। इन्हीं की ही तरह 'प्रभा खेतान' ने भी राजस्थान की जीवन शैली का अंकन करते समय हिन्दी में राजस्थानी भाषा का मिश्रण किया है। अतः हम कह सकते हैं, कि हिन्दी क्षेत्र की शायद ही कोई ऐसी भाषा है, जो उस क्षेत्र विशेष पर आधारित होने के बाद भी हिन्दी भाषा के साथ मिश्रित न हुई हो।

'अमृतलाल' कहानी के अनुरूप भाषा की विविधता भरे प्रयोग के लिए जाने जाते हैं। 'नाागर जी' हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने नगरवासी पात्रों से उनके व्यक्तित्व के

अनुरूप अवधी, ब्रजभाषा और लखनवी मिश्रित हिन्दी का सर्जनात्मक धरातल पर प्रयोग कराया और पाठकों ने इनके इस प्रयोग को अर्थ के साथ स्वीकार किया। *'बूँद और समुद्र' से लेकर 'पीढियाँ'* उपन्यास में इस भाषा के अनेक रंग दिखाई पडते हैं। लखनऊ 'नागर जी' के उपन्यासों का प्रमुख शहर हैं। इन शहरों में विभिन्न जनपदों के निवासी अपनी विभिन्न बोली-बानी के साथ आते हैं, इनके अलावा समाज के विभिन्न वर्गों के पात्र हैं, जिनकी बोलियों के अपने-अपने रंग हैं।

भाषिक प्रयोग की दृष्टि से 'कृष्णा सोबती' के उपन्यास भी उल्लेखनीय हैं। उनके शुरुआती उपन्यासों की भाषा पंजाबीपन लिए एक यथार्थ और जानदार भाषा है, जो इसके पहले हिन्दी कथा साहित्य में प्रयुक्त नहीं हुई थी। पंजाबी के मिश्रण से हिन्दी को सजीव और समृद्ध बनाने का 'कृष्णा सोबती' का प्रयास अनूठा है। उनके अन्य उपन्यास *'दिलोदानिश'* में सोबती जी ने एक ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें हिन्दी और उर्दू का अन्तर बिल्कुल खत्म हो गया है। यह वह भाषा है, जिसे उन्नीवसीं सदीं के हिन्दू और मुसलमान समान रूप से बोलते थे, यद्यपि इस भाषा में अनेक ऐसे फारसी शब्द भी प्रयोग में लाए गए हैं, जिन्हें सामान्य हिन्दी पाठक बिना शब्दकोश की सहायता के नहीं समझ सकता, पर एक सदीं पहले दिल्ली की जिन्दगी में ये शब्द अजनबी नहीं थे। इन शब्दों के साथ दिल्ली में बोले जाने वाले ठेठ शब्दों का मिश्रण कर 'सोबती जी' ने अपने उपन्यासों की भाषा को जानदार बना दिया है।

उपन्यासों की भाषा का एक अन्य विशेष रूप हमें उन उपन्यासों में दिखाई पडता है, जो जीवन को ठोस यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ से सम्बद्ध होते हैं। 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय' और 'निर्मल वर्मा' के उपन्यासों में चिन्तन और संवेदना के तत्व प्रमुख हैं और उनकी भाषा भी उसी के अनुरूप मन की गहराईयों में प्रवेश करने वाली है। सदीं के अन्तिम दशक में हिन्दी उपन्यास की भाषा में एक नयी प्रवृति विकसित होती दिखाई देती है।

भाषिक सर्जनात्मकता की दृष्टि से 'हजारी प्रसाद द्विवेदी', 'मन्नू भंडारी', 'सुरेन्द्र वर्मा' और 'प्रियंवद' प्रमुख हैं, जिन्होंने विभिन्न शैलीय उपकरणों की सहायता से उपन्यास की भाषा को सर्जनात्मक ऊँचाई पर पहुँचाया है। 'शैलेश मटियानी' ने उपन्यासों में सरल खडी बोली में कुमायुँनी शब्दों और मुहावरों का मिश्रण कर कथा भाषा को अत्यन्त स्वाभाविक और सर्जनात्मक

बना दिया है। इनके उपन्यासों में पहाडी शब्दों का मिश्रण इतना सन्तुलित है कि उससे हिन्दी भाषा अत्यन्त समृद्ध हुई है।

भाषा के साथ-साथ 'शैलेश जी' के उपन्यासों में शिल्प शैली का भी अच्छा अंकन हुआ है। 'नरेटर' के अवलोकन बिन्दू के साथ पात्रों के अवलोकन बिन्दू के मिश्रण से कथाशिल्प में नवीनता के साथ-साथ विश्वसनीयता और निजता तथा आत्मीयता का भाव पैदा हो गया है। 'रूपली-घुघती चिरैया' और 'सोनपंख घुघत' की लोककथा के उपयोग से केन्द्रीय पात्र देवकी की कन्या अकथनीय रूप से मार्मिक बन गयी है। पात्रों की सृष्टि लेखक की गहरी संवेदना की देन है। पूरा उपन्यास लोककथाओं के मार्मिक संगीत से अनुगुंजित है। यद्यपि उपन्यासकार ने पूरा का पूरा एक गीत भी उदृत नहीं किया है, जिसका मोह आँचलिक उपन्यासकार अक्सर छोड नहीं पाते। इस प्रकार केन्द्रीय कथ्य को लोककथाओं के प्रभाव से धारदार और मार्मिक बनाने के लिए जिस आँचलिक उपन्यास शिल्प का आविष्कार रेणु ने *'मैला आँचल'* में किया था, उसे आगे बढाने में 'मटियानी जी' का महत्वपूर्ण योगदान है। 'मटियानी जी' के अन्तिम दौर के उपन्यासों की भाषा प्रखर एवं ताकतवर रूप में दिखाई देती है। 'अमृतलाल नागर' की तरह ही 'मटियानीजी' भी किसी वर्ग विशेष की भाषा को उसकी समस्त बारीकियों के साथ उल्लेखित कर देते हैं। वेश्याओं, दलालों और दलित वर्ग की भाषा का निर्माण करने की अद्‌भुत क्षमता 'मटियानीजी' में है। इनकी भाषा में सीधी मार करने वाले मुहावरों की तो भरमार सी है। दलित समाज के नारकीय जीवन का चित्रण उन्होंने जिस वैचारिक तल्खी और संवेदनात्मक गहराईं के साथ किया है, वह अद्‌भुत है। औपचारिक शिक्षा की पूँजी नगण्य होते हुए भी जीवन से गहन सम्पर्क और सर्जनात्मक ऊर्जा के कारण उनकी भाषा में जैसा सर्जनात्मक विकास दिखाई देता है, वह आश्चर्य में डालने वाला है। 'मटियानी जी' के साथ-साथ 'मोहन राकेश' के उपन्यासों में व्यक्ति मन की छटपटाहट, प्रश्न, बैचेनी आदि की प्रधानता है और उनकी कथा और भाषा भी उनके उपन्यासों के अनुरूप है। 'मोहन राकेश' की भाषा में एक संवेदनात्मक बैचेनी है, जो पाठकों को आकृष्ट करती है। 'मोहन राकेश' की ही तरह 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' के *'पुनर्नवा'* और *'अनामदास का पोथा'* नामक उपन्यासों में संवेदनशील भाषा द्वारा ऐतिहासिक मार्मिक प्रसंगों का अंकन किया है।

औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से 'द्विवेदी जी' की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उपन्यास में कथाकार की अप्रत्यक्षता के सिद्धान्त को स्पष्ट करना है। इन्होंने अपने सभी उपन्यासों में

कथाकार को इस प्रकार विलुप्त किया है, कि पाठकों को पूर्णत: धोखा जैसे प्रतीत होता है। इस अप्रत्यक्षता के अन्दर आत्मकथात्मक, दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक, कान लगाकर पात्रों का वार्तालाप सुनने वाली प्रविधियों का उपयोग भी अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है। 'द्विवेदी' ने इसी शिल्प का प्रयोग अपने सभी उपन्यासों में किया है।

'द्विवेदी' के उपन्यासों की भाषा प्राय: तत्सम् शब्द प्रधान और काव्यगुणों से अंलकृत होती है। अंलकारों की छटा, समस्त शब्दों की बहार, ध्वन्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करने वाले पद और मन्द गम्भीर प्रवाह उत्पन्न करने वाले वाक्य उनके उपन्यासों में अक्सर मिलते हैं। *'अनामदास का पोथा'* उपन्यास में सहज भाषा का प्रभाव है, यही आकर्षण का केन्द्र है। *'अनामदास का पोथा'* का केन्द्रीय पात्र 'रेक्व' तो ऋषि होते हुए भी बालस्वभाव का युवक है, अत: उसकी भाषा भी इसके बालपन की अवस्था का दर्पण है। उपन्यास के अन्य पात्र भी जीवन की सहज सरल भाषा ही बोलते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में बोलचाल के तत्सम-तद्भव शब्दों से युक्त सरल और संयुक्त वाक्यों वाली बोलचाल की शिष्ट भाषा ही प्रयुक्त हुई है, यद्यपि वह समस्त शैलीय गुणों से सम्पन्न होने के कारण अद्भुत सर्जनशीलता का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

'हजारी प्रसाद द्विवेदी' से अलग 'निर्मल वर्मा' के उपन्यासों की भाषा एक प्रकार की अवसाद, अलगाव बोध, एकान्त की पीडा के कारण कृत्रिम संवेदनशीलता की शिकार हो गयी है। कुछ सीमित संवेदनाओं और भाविक इन्द्रजाल के बार-बार दोहराव से उपन्यासों की पठनीयता में अवरोध उत्पन्न होता है। इनकी भाषा के अलावा अध्ययन करें तो, शिल्प में एक ताजगी दिखाई देती है। ताजगी यह है, कि उपन्यास *'लाल टीन की छत'* में उसकी केन्द्रीय पात्र 'काया' बडी होने के बाद अपने वय सन्धि के अनुभवों को पुन: जीती हुई, उन स्थितियों एवं संवेदनाओ को व्यक्त करती है। *'लाल टीन की छत'* उपन्यास की भाषा स्मृति, संवेदना और अनुभूति की भाषा है। इनके अन्य उपन्यास *'एक चिथडा सुख'* की भाषा कतिपय बुद्धिजीवियों के एक साथ रहते हुए भी अलग-अलग जीने के अनुभव को मानव सम्बन्धों की जटिलता और गहरी उदासीनता के मध्य सुख की तलाश का बहुत ऊबाऊ अंकन करती है।

'गुलशेर खाँ शानी' के उपन्यासों की भाषा सर्जनात्मक विशेषताओं से भरपूर है। परिनिष्ठित हिन्दी का देसी स्वभाव इसमें पूरी तरह सुरक्षित है। मुस्लिम समाज की कथा

अधिकतर उपन्यासों में होने के बावजूद 'शानी जी' ने इनकी भाषा को अनावश्यक तथा उर्दू से रंजित नहीं बनाया है। इनकी भाषा में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो मुस्लिम संस्कृति के अभिन्न अंग है। उपन्यास में प्रचलित शब्दों के संयत प्रयोग से 'शानी जी' ने अपनी भाषा को अद्‌भुत रूप से जीवन्त बना दिया है। सर्जनात्मक भाषा के अन्य गुण भी 'शानी जी' के उपन्यासों की भाषा मे दिखाई पडते हैं ।

'राही मासूम रजा' कथ्य, शिल्प एवं भाषा की दृष्टि से सशक्त उपन्यासकार माने गए है। इनके उपन्यासों में *'औस की बूँद', 'दिल एक सादा कागज', 'कटरा बी आर्जू'* में शिल्प की दृष्टि से ताजगी दिखाई देती है। इनविक्टोरिया समय के ॲगरेजी और यूरोपीय उपन्यासों में कथाकार की आसन्नवर्तमानता को खत्म करने के सफल प्रयोग किए गए है। अतः इन उपन्यासों को 'प्रेमचन्द' परवर्ती उपन्यास में रखने का प्रयत्न किया गया है। 'जैनेन्द्र' 'अज्ञेय', 'राहुल सांस्कृत्यायन' 'हजारी प्रसाद द्विवेदी', 'फणीश्वरनाथ रेणु' आदि के उपन्यास भी कथाकार को नेपथ्य में रखने के प्रमाण है। 'राही मासूम रजा' ने इस सबके विपक्ष अप्रत्यक्षता के सिद्धान्त को चुनौती देते हुए, बिना किसी हिचक के कथाकार को पाठक का सहयात्री बना दिया है। 'राही जी' के उपन्यास आरम्भ से ही पाठकों के साथ आत्मीयता पैदा कर लेते हैं, तथा बिना किसी तकलीफ के उपन्यास में शामिल हो जाते हैं। जहाँ किसी पात्र का अवलोकन बिन्दू पर्याप्त प्रतीत नहीं होता है, वहाँ वे कथा का सूत्र संभाल लेते हैं। 'राही जी' अपने उपन्यासों में न केवल पाठक को सम्बोधित करते हैं, वरन् उसे विश्वास में लेकर बहुत सी बातों का खुलासा भी करते हैं। पाठक के साथ कथाकार की यह अनौपचारीकता खटकने के बजाय रूचिकर लगती है। इस प्रकार राही ने किस्सागोई की प्रविधि को नया अन्दाज दिया है। इस प्रकार 'राही मासूम रजा' ने बडें ही सहज ढंग से अपने औपन्यासिक संसार को पाठकों के समक्ष खोलने में समर्थ होते हैं। 'राही मासूम रजा' के उपन्यासों की भाषा का भी अपना एक खास अन्दाज, रंग और अदा है। उन्होंने स्थानीय बोलियों, खासकर मुसलमानों द्वारा बोली जाने वाली भोजपुरी का प्रयोग इतने रचनात्मक ढंग से किया है तथा उसमें पात्रों के पूरे व्यक्तित्व, उनकी सोच, मानसिकता और भावना को इस प्रकार साकार कर दिया है, कि उस भाषा से पात्रों के व्यक्तित्व को अलग नहीं किया जा सकता। *'आधा गाँव'* उपन्यास में भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलित गालियों के प्रयोग पर कुछ आलोचकों ने आपत्ति जाहिर की है, पर इन गालियों ने उस जीवन को उसकी पूरी जीवन्तता में प्रस्तुत कर दिया है। यह भाषा इस पात्रों की जिन्दगी का अभिन्न हिस्सा है। इतनी अटपटी,

व्याकरण की दृष्टि से बेतरतीब, अपभ्रष्ट शब्दों से युक्त भाषा को इतना व्यंग्यपूर्ण,अर्थवान और सर्जनात्मक रूप दे देना, एक श्रेष्ठ उपन्यासकार के द्वारा ही सम्भव है।

शिल्प और भाषा की दृष्टि से अगर अध्ययन करें, तो 'गिरिराज किशोर' का कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं है। इन्होंने उपन्यास की प्रचलित शिल्प प्रविधियों का ही सहारा लिया है, यद्यपि उनके प्रयोग में उन्होंने रचना विवेक का परिचय दिया है। *'लोग'* उपन्यास में एक बच्चे के अवलोकन बिन्दू की सहायता ली गई है, तो *'ढाई घर'* में एक चौरासी वर्ष के वृद्ध के अवलोकन बिन्दू की सहायता ली गई है। *'जुगलबन्दी'* और *'पहला गिरमिटिया'* उपन्यास में दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक प्रविधि का भी सर्जनात्मक उपयोग दिखाई पडता है। *'यथा-प्रस्तावित'* का कथा शिल्प इस आशय में नया है, कि इसमें एक संचिका में नत्थी पत्रों और टिप्पणियों के माध्यम से उपन्यास का कथ्यसंसार बुना गया है। 'किशोर जी' की भाषा सर्जनात्मक तो है, पर उसमें वह ठनक, वैविध्य, धार और संवेदनशीलता नहीं है, जो 'विवेकी राय', 'अमृतलाल नागर', 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' और 'निर्मल वर्मा' में है।

शिल्प की दृष्टि से 'भीष्म साहनी' का *'तमस'* उपन्यास एक अपेक्षाकृत फैली हुई कथा के भीतर अर्न्तकथाओं की योजना तथा नाटकीय शिल्प के प्रयोग से यह उपन्यास पाठक मन पर गहरा प्रभाव छोडने में समर्थ होता है। इस उपन्यास की भाषा भी नाटकीय प्रभाव से युक्त और गहरी संवेदनाओं को व्यक्त करने की क्षमता से सम्पन्न है। शिल्प और भाषा की दृष्टि से 'भीष्म जी' के अन्य उपन्यासों में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं दिखाई देती है। अवलोकन बिन्दुओं के चुनाव और काल योजना में अपेक्षित सावधानी बरती गयी है। भाषा के रचाव में भी 'भीष्म जी' ने अपेक्षित सर्जनशीलता का परिचय दिया है। साफ सुथरे और पारदर्शी गद्य में रोजमर्रा की जिन्दगी का अंकन करने में 'भीष्म साहनी' को महारत हासिल है। पंजाबी शब्दों के सन्तुलित प्रयोग ने उनकी भाषा को स्वाभाविक और सजीव बनाने में उल्लेखनीय योग दिया है। 'भीष्म साहनी' के 'तमस' के अलावा अन्य उपन्यासों की ही तरह 'शिव प्रसाद सिंह' के उपन्यास उल्लेखनीय रूप से प्रभावित नहीं कर सकें। अधिकतर उपन्यासों में शिल्प की दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक प्रविधि का उपयोग किया है, पर इसमें परिवर्तन, स्थानान्तरण और मिश्रण की दृष्टि से किसी विशेषता का परिचय नहीं दिया है। शिल्प निर्माण में जिस सावधानी और सतर्कता की अपेक्षा की जाती है, वह भी अधिक मात्रा में उनमें नहीं मिलती। *'गली आगे मुडती है'* में

शिल्पगत सजगता दिखाई देती है, पर वह सजगता उनके परवर्ती उपन्यासों में नहीं दिखाई देती है। विवरणों की बहुलता ने भी उनके कथा संसार की स्वाभाविकता को बाधित किया है।

भाषा की सर्जनात्मक दृष्टि से 'शिव प्रसाद सिंह' के प्रारम्भिक दो उपन्यासों में चित्रित समाज और वर्ग की भाषा अर्थात् भोजपुरी से जुडे होने के कारण शक्त हैं, पर उनके परवर्ती उपन्यास एक आरोपित साहित्यिकता के बावजूद ज्यादा मोहित नहीं कर पाए। 'विवेकी राय' के उपन्यास शिल्प और भाषा की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उन्होंने परिचित कथा प्रविधियों का बहुत ही सार्थक और सर्जनात्मक प्रयोग किया है। चलती हुई कथा के प्रवाह को रोककर बीच में दूसरा प्रसंग ला देना और बाद में प्रथम प्रसंग को किसी पात्र की स्मृति या किसी माध्यम से प्रस्तुत करने की युक्ति बडी ही मन–भावन लगी है। कथा पेश करने के लिए अवलोकन बिन्दुओं के चुनाव और स्थानान्तरण में उन्होंने हर दर्जे की सावधानी और मौलिकता दिखाई है। अवलोकन बिन्दुओं का स्थानान्तरण इतनी कुशलता के साथ होता है, कि पाठक सब कथाकार की चेतना से निकलकर किसी पात्र की चेतना में प्रवेश कर जाता है, इसका उसे पता ही नहीं चलता। *'लोकऋण'* उपन्यास में गिरीश और धरमू के अवलोकन बिन्दुओं के चुनाव और निर्वाह की कुशलता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इन दोनों पात्रों की संवेदना से गुजरती गाँव की जिन्दगी अपने समस्त बाह्य और आन्तिरक यथार्थ के साथ सजीव हो उठी है। इसी प्रकार *'सोना माटी'* और *'समर शेष है'* उपन्यास में रामराज और सन्तोषी मास्टर के अवलोकन बिन्दू अपनी संवेदनशीलता के कारण कथा संसार को एक अनोखे प्रभाव से भर देते हैं। किस्सागोई मे नाटकीय प्रभाव पैदा करने की कला में भी 'विवेकी राय' सफल उपन्यासकार है।

'विवेकी राय' के उपन्यासों की भाषा पूर्वांचँल की जिन्दगी से जुडी होने के कारण विशिष्ट प्रभाव से युक्त हो गयी है। भोजपुरी शब्दों के प्रयोग 'विवेकी राय' की भाषा की अनोखी सर्जनात्मकता से भर देते हैं। ये शब्द अपने सन्दर्भ से इस प्रकार जुडे हैं, कि उनका कोई पर्याय हो ही नहीं सकता। 'विवेकी राय' न तो आँचलिकता का रंग पैदा करने के लिए जानबूझकर आँचलिक शब्दों का प्रयोग करते हैं, न ही पात्रों को भोजपुरी बोलने के लिए बाध्य करते हैं। वे 'रेणू' की अपेक्षा 'प्रेमचन्द' की भाषा पद्धति अपनाते हैं और सहज रूप से परिनिष्ठित हिन्दी को उससे आँचलिक परिवेश से जोड देते हैं। 'विवेकी राय' ने हिन्दी को जितने नए शब्द दिए हैं, 'प्रेमचन्द' के पश्चात् शायद ही कोई दूसरा उपन्यासकार दे सका है। यह इसलिए सुलभ हो सका है, कि 'विवेकी राय' 'प्रेमचन्द' की ही तरह अपनी भाषा गाँवों के

जीवन से लेते हैं। 'विवेकी राय' में ग्रामीण पात्रों के लहजों या स्वर को चुरा लेने की अद्‌भुत क्षमता है। भोजपुरी और परिनिष्ठित हिन्दी के मिश्रण से उत्पन्न लहजों की प्रस्तुति में उन्होंने सूक्ष्म अवलोकन क्षमता का परिचय दिया है। पात्रों के मन का द्वन्द्व उनके अन्तरालाप की भाषा से स्पष्ट हो जाता है। नितान्त सरल सपाट भाषा भी पात्रों की मानसिकता से जुडकर प्राणवान हो जाती है।

इनके पश्चात् 'कृष्णा सोबती' जी के उपन्यास भाषा एवं शिल्प के घरातल पर खरे उतरे हैं। 'कृष्णा सोबती' के उपन्यासों की भाषा पंजाबीपन की गमक लिए हुए है। पंजाबी शब्दों और मुहावारों से भरपूर एक प्राणवान एवं यथार्थ भाषा है। ऐसी भाषा इनके उपन्यासों से पहले कभी भी प्रयोग में नहीं ली गयी थी। हिन्दी का स्वभाव यह है कि उसमें सर्जनात्मक सजीवता उसकी विभिन्न बोलियों के माध्यम से आती है। पर पंजाबी के मिश्रण से हिन्दी को सजीव बनाने का 'कृष्णा सोबती' का प्रयास अनुपम है। जिस समाज का चित्रण उनके उपन्यासों *'मित्रो मरजानी'* एवं *'सूरजमुखी अँधेरे के'* में हुआ है, यह भाषा उनके सर्वथा अनुरूप है। परन्तु 'कृष्णा सोबती' जी के एक अन्य उपन्यास *'जिन्दगीनामा'* में उनका भाषा सम्बन्धी यह प्रयोग अस्वाभाविक सा प्रतीत हुआ है। हर भाषा की ही तरह हिन्दी में भी अन्य भाषा का मीलान एक सीमा तक ही सही ठहरता है। 'कृष्णा जी' ने इस उपन्यास में हिन्दी भाषा को पंजाबी भाषा के शब्दों से भर दिया, जिससे वह हिन्दी पाठकगणों के लिए बोझिल, कृत्रिम व अबोधगम्य हो गयी है। यथार्थवाद के नाम पर किसी भी भाषा को अधिक सीमा तक विरूपित नहीं किया जा सकता कि वह अपनी मूल पहचान को ही भूल जाए। भाषा शैली से हटकर यदि 'कृष्णा जी' के उपन्यासों का शिल्प की दृष्टि से विचार करें तो *'जिन्दगीनामा'* उपन्यास से दृश्यों का ही एकाधिपत्य है। पर ये दृश्य, दृश्य कम वार्तालाप अधिक हैं। इन्हें जोडने वाले कहानीकार की भूमिका रंग-निर्देशक जैसी है। इसके अलावा कथा-रस तो बाधित हुआ ही है, प्रयोग की कोई सार्थकता भी प्रमाणित नहीं होती है।

'कृष्णा सोबती' के अन्तिम दो उपन्यास *'दिलोदानिस'* और *'समय सरगम'* भाषा की दृष्टि से ध्यानाकर्षक उपन्यास है। *'दिलोदानिस'* की भाषा करारी हिन्दुस्तानी है, जिसमें अरबी-फारसी शब्दों की इतनी अधिकता है, कि साधारण पाठक बिना शब्दकोश की सहायता से उसे नहीं समझ सकता। इसमें दिल्ली में बोले जाने वाले ठेठ देसी शब्दों का मिश्रण कर 'सोबती जी' ने भाषा को बहुत जीवन्त बना दिया है। अभिजात मुस्लिम परिवारों में बोली जाने वाली

हिन्दुस्तानी के लहजों, आदरार्थ के बहुवचन के प्रयोगों, वचन विदग्धता आदि के कारण उपन्यास की भाषा अपने कथ्य को विश्वसनीय बनाने में पूरी तरह से समर्थ है। 'समय सरगम' की भाषा आश्चर्यजनक रूप से नयी है। इसके पहले 'सोबती जी' ने *'मित्रो मरजानी'* से लेकर *'दिलोदानिस'* तक भाषा सम्बन्धी कई प्रकार के प्रयोग कर चुकी थी। अन्त में वे उस भाषा पर पहुँची है, जिसे तत्सम प्रधान टकसाली हिन्दी कहा जा सकता है। यद्यपि इसमें वैविध्य से पैदा होने वाली सर्जनात्मकता नहीं है, पर वृद्ध जनों की संवेदनाओं को व्यक्त करने में यह पूरी तरह से समर्थ है।

शिल्प और भाषा विषयक प्रयोगधर्मिता 'बदीउज्जमॉ' के उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। *'एक चूहे की मौत', 'कथा-सरितसागर'* और *'काका की मेटामार्फोसिस'* नामक उपन्यासों में प्रयुक्त शिल्प का कुशल प्रयोग करके उन्होंने शिल्पगत मौलिकता का परिचय दिया है। प्रतीकात्मक होने पर भी इनका कथा संसार पाठक की संवेदना को स्पर्श करता है। *'छाकों की वापसी'* उपन्यास में पात्रों का प्रयोग वे बडी कुशलता से करते हैं। उपन्यास के कथ्य के अनुरूप भाषा को ढालने में भी उन्हें उल्लेखनीय सफलता मिली है। उर्दू भाषा में मगधी का मिश्रण करके उन्होंने एक ऐसी औपन्यासिक भाषा का सृजन किया है, जो मगधी मुस्लिम समाज की जीवन-वास्तविकता को विश्वसनीय रूप से उजागर करती है।

'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' के उपन्यासों में शिल्प के अनुरूप व्यंजनापूर्ण भाषा भी जान पडती है। इनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से दुरूस्त और परिनिष्ठित भाषा से अलग अटक-अटककर चलने वाले अधूरे वाक्यों, शब्दों और बिन्दुओं से निर्मित चित्रभाषा है, जो धाराप्रवाह कहानी कहने के बदले दृश्य-श्रृंखला निर्मित करती है। अनपढ लोगों द्वारा बोली जाने वाली बम्बईया हिन्दी, सुसंस्कृत कानों को अटपटी लगने के बावजूद चित्रों में जान भर देती है। उपन्यासकार नरेटर के रूप में अपनी उपस्थिति का बोध नहीं कराता, वह केवल छोटे-छोटे चित्र निर्मित करता है, जो बीच-बीच में अपनी गतिशीलता को स्थगित कर दृश्य में बदल जाते हैं। अतः 'बदीउज्जमॉ जी' के उपन्यासों में भाषा एवं शिल्प दोनों ही को इस तरह से व्यक्त किया गया है, जिससे वह पाठक की संवेदना को स्पर्श करता है। किन्तु इसी समय में 'जगदीशचन्द्र' एवं 'नरेन्द्र कोहली' के उपन्यासों को भाषा एवं शिल्प शैली इतनी सुदृढ नहीं हो पाई, जितनी की 'बदीउज्जमॉ' एवं अन्य उपन्यासकारों की हो। शिल्प की दृष्टि से 'जगदीशचन्द्र' के उपन्यासों में कोई विशिष्टता नहीं है। परिनिष्ठित हिन्दी में हरियाणवीं शब्दों का मिश्रण कर भाषा को सजीव

और स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया गया है, पर भाषा को किसी विशिष्ट सर्जनात्मक ऊँचाई पर अवस्थित करने में उन्हें सफलता नहीं मिली है। इसी शिल्प की दृष्टि से 'नरेन्द्र कोहली' के उपन्यासों में कोई नवीनता नहीं है, पर उन्होंने प्रचलित शिल्प प्रविधियों के प्रयोग और अवलोकन बिन्दुओं के चुनाव, परिवर्तन और स्थानान्तरण में कुशलता का परिचय दिया है। 'नरेन्द्र कोहली' की भाषा विषय की प्रकृति के अनुरूप तत्सम्प्रधान और टकसाली है, यद्यपि इसी कारण वह अविशिष्ट भी हो गयी है।

इसी तरह 'भगवान सिंह जी' का उपन्यास *'महाभिषंग'* का शिल्प अधिक सजगता की वजह से इसे अपठनीय बनाता है। अवलोकन बिन्दुओं के अनावश्यक विस्तार और चक्ल्लसपन के प्रभाव को नष्ट करता प्रतीत होता है। 'मृदुला गर्ग' के उपन्यास *'चितकोबरा'*, *'अनित्य'*, *'वंशज'*, *'मैं और मैं'* आदि में भाषा और शिल्प विषयक कुछ प्रयोग, जैसे प्रमुख स्त्री पात्र द्वारा, अन्तरावलोकन के रूप में, अपने मानस में उमडते विचारों और अवचेतन की अनुभूतियों की कालक्रमविहीन प्रस्तुति, मनः स्थितियों के अनुसार वाक्यों की लम्बाई का निर्धारण, शब्दों के चयन में गन्ध, स्वाद, ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि आदि का प्रभाव पैदा करने की कोशिश कर पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का अनुकरण जैसा प्रतीत होता है। शिल्प और भाषा का दृष्टि से 'मृदुला गर्ग' का *'कठगुलाब'* अन्य उपन्यासों की तुलना में उच्चतर सोपान पर व्यवस्थित है, यद्यपि इसका अन्त आश्वस्तकारी नहीं है। विभिन्न पात्रों के अवलोकन-बिन्दुओं से कहानी प्रस्तुत करने का प्रयोग नया तो नहीं है, पर उसे अधिक प्रभावी बनाने में लेखिका को किंचित सफलता मिली है। 'मृदुला गर्ग' के पास अनुभव और संवेदना को व्यक्त करने वाली समर्थ भाषा है, इनके उपन्यास में यह भी प्रमाणित होता है। इस अनुभव और बोध की प्रस्तुति के लिए उपन्यासकार ने विषय के लिए अनिवार्य, सटीक और सर्जनात्मक शिल्प-प्रविधि अपनायी है। उपन्यास का पूरा कथा संसार केन्द्रीय पात्र 'चन्दन' के अन्तरालाप के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो कहीं खटकता नहीं है। उपन्यास की भाषा बातचीत के अनुरूप है, जिसमें छोटे-छोटे, सरल और प्रायः सहायक क्रिया से रहित वाक्य प्रयुक्त हुए है। यह भाषा भय-युक्त, नाटकीय प्रभावसम्पन्न तथा बिम्बात्मक है।

'कामतानाथ' के उपन्यासों *'एक और हिन्दुस्तान'* तथा *'तुम्हारेनाम'* में भी भाषा विवरणों की अधिकता के कारण सपाट हो गयी है। इसे सजीव और वैविध्यपूर्ण बनाने के लिए लेखक ने पात्रों से अवधी का प्रयोग कराया है। परन्तु यह मिश्रण तिल और चावल के मिश्रण की तरह

अलग-अलग दिखाई पडता है। 'प्रेमचन्द', 'रेणू', 'विवेकी राय', 'कमलकान्त त्रिपाठी' आदि ने परिनिष्ठित हिन्दी में अवधी-भोजपुरी का जैसा कलात्मक मिश्रण किया है, वह मिश्रण इनके उपन्यासों में सम्भव हो सका है।

'मंजूर एहतेशाम' और 'मृणाल पांडेय' ने भाषा एवं शिल्प शैली का अच्छा अंकन अपने उपन्यासों में किया है। 'मंजूर एहतेशाम' जी के उपन्यास *'कुछ दिन और'* में अवलोकन बिन्दुओं के चुनाव तथा उनके स्थानान्तरण में भरपूर सतर्कता का ध्यान रखा है, जिससे कथा संसार विश्वसनीय और आकर्षक बन गया है। भाषा भी पात्रों की संवेदना का साथ देने के कारण सर्जनात्मकता से युक्त हो गयी है।

'मृणाल पांडेय' के पहले उपन्यास *'विरूद्ध'* की सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसकी भाषा रचना है, जो परिनिष्ठित हिन्दी में पहाडी शब्दों और लहजों के मिश्रण से निर्मित हुई है। इस मिश्रण से उपन्यास की भाषा पर्याप्त अबोधगम्य हो गयी है, जिसे दूर करने के लिए उपन्यासकार को पादटिप्पणियों में शब्दों के अर्थ देने पडे हैं। इस भाषा की सार्थकता, कथा को प्रस्तुत करने की प्रविधि, जो एक पहाडी भाषा बोलने वाली बूढी औरत से सुनी कहानी के रूप में है, से जुडी हुई है। अतः हम कह सकते हैं कि इनकी भाषा एवं शिल्प शैली उत्कृष्ट बन पडी है।

'श्रवण कुमार गोस्वामी जी' ने भी अपने उपन्यासों में प्रतीकों और रूपकों की योजना में अच्छी सूझबूझ का परिचय दिया है। दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक प्रविधि का सन्तुलित प्रयोग उनके सभी उपन्यासों में हुआ है। भाषा में व्यंग्य उत्पन्न करने की कला भी 'गोस्वामी जी' में भरपूर मात्रा में है।

'भीमसेन त्यागी' के उपन्यासों में *'नंगा शहर'* उपन्यास में उपन्यासकार ने अपनी कथा को मूर्त करने के लिए एक फन्तासी लोक का निर्माण किया है। प्रयोगात्मक उपन्यास होने पर भी *'नंगा शहर'* की रोचकता नष्ट नहीं हुई है। इसके कुछ प्रसंग बडे ही मार्मिक है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र के मन में पैदा होने वाले तनाव, दहशत, ऐंठन, विवशता, विद्रोह आदि को यह भाषा अपनी विभिन्न मुद्राओं में सफलतापूर्वक व्यक्त करते हैं।

शिल्प और भाषा की दृष्टि से 'प्रभा खेतान' ने कोई चौंकाने वाला प्रयोग नहीं किया है, अपने विषय के अनुरूप शिल्प और भाषा के चुनाव में उन्होंने सर्जनात्मक सजगता का परिचय दिया है। *'छिन्नमस्ता'* की केन्द्रीय पात्र 'प्रिया' अपने अतीत को संवेदना के स्तर पर जीती भी है और उसका तटस्थ ढंग से विश्लेषण भी करती है। इसमें संवाद की काफी सटीक और सर्जनात्मक शिल्प शैली अपनायी गयी है। *'पीली आँधी'* उपन्यास में भी दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक अन्तरालाप और डायरी प्रविधि का सर्जनात्मक उपयोग किया गया है। अनुभूति की भाषा में प्राप्त होने वाली आन्तरिकता और गहनता 'प्रभा खेतान' के उपन्यास की भाषा की प्रमुख पहचान है। *'पीली आँधी'* उपन्यास में परिनिष्ठित हिन्दी में राजस्थानी और *'तालाबन्दी'* उपन्यास में राजस्थानी के साथ बँगला का मिश्रण बहुत ही सन्तुलित और सर्जनात्मक रूप में किया गया है, जो कथ्य को स्वाभाविकता प्रदान करने के साथ-साथ प्रभावशाली भी बनाता है।

सभी उपन्यासकारों में 'मैत्रेयी पुष्पा' ने अपने उपन्यासों में विन्ध्य और ब्रज-अंचलों के यथार्थ-अंकन को विश्वसनीय बनानें के लिए उन अंचलों में प्रचलित बोलियों के ठेठ शब्दों, मुहावरों और लहजों का मानक हिन्दी में प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है, जिसके फलस्वरूप उनके उपन्यासों की भाषा खुरदरी और यतकिंचित ऊबडखाबड भी हो गयी है। यह खुरदरापन 'मैत्रेयी जी' की भाषा को एक ताजगी प्रदान करता है। 'मैत्रेयी जी' की औपन्यासिक भाषा की एक उल्लेखनीय विशेषता ग्रामीण और निम्नवर्गीय स्त्रियों की भाषा को जैसे का तैसा प्रस्तुत कर देना भी है। पर उनकी भाषा में और कथ्य में भी, वह संवेदनशीलता नहीं है, जो 'रेणू' की भाषा में है। 'मैत्रेयी जी' अपने उपन्यासों में शिल्प के प्रति सजग तो हैं, पर उन्होंने अवलोकन बिन्दुओं के परिवर्तन की जिस प्रविधि का उपयोग किया है, वह कई जगहों पर उलझ गयी है, अर्थात् उलझी सी दिखाई पडती है।

'चित्रा मुद्‌गल' के इस समय का उपन्यास *'एक जमीन अपनी'* शिल्प की दृष्टि से पाठकों को आश्वस्त नहीं कर पाया। अवलोकन बिन्दुओं का परिवर्तन और अतीत का पुनरावलोकन एक बहुत परिचित कथा प्रविधि बन चुकी है परन्तु उपन्यासकार से उसका विश्वसनीय और सफल निर्वाह नहीं हो पाया है। भाषा में पात्रों के अनुरूप विविधता का सृजन किया गया है, और वह उनके चरित्र को पहचान देने में भी समर्थ है, पर नरेटर या वाचक की भाषा व्याकरण और रचना की दृष्टि से साफ-सुथरी, सहज और प्रवाहपूर्ण नहीं है।

'विरेन्द्र जैन' और 'कमलाकान्त त्रिपाठी' दोनों ही उपन्यासकारों ने भाषा एवं शिल्प का अपने उपन्यासों में अच्छा अंकन किया है। 'वीरेन्द्र जैन' की सर्जनात्मकता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है, कि उन्होंने ब्योरों के साथ संवेदनात्मक क्षणों और परिस्थितियों का अंकन अत्यन्त सावधानी के साथ किया है। भाषा की दृष्टि से भी *'डूब'* आँचलिक उपन्यासों को श्रेणी में आता है। *'डूब'* की विशेषता यह है, कि इसमें बुन्देलखण्डी के मिश्रण से हिन्दी की प्रकृति को कोई हानि नहीं हुई है और सर्जनात्मक दृष्टि से भाषा सजीव हो गयी है। 'कमलाकान्त त्रिपाठी' के उपन्यास *'पाही घर'* में ग्रामीण संस्कृति अपने समस्त सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत हुई है। अपने जटिल सामाजिक सांस्कृतिक बनावट के साथ अवध का समग्र लोकजीवन यहाँ उपस्थित है। उपन्यास में अवध क्षेत्र की स्थानीय भाषा के शब्दों का सर्जनात्मक और सानुपात उपयोग किया गया है, जो परिनिष्ठित हिन्दी को बिना कोई हानि पहुँचाए, एक ताजगी से भर देता है। शैलीय उपकरणों के सर्जनात्मक उपयोग से 'त्रिपाठी जी' की भाषा बहुत शक्त हो गयी है। प्रंसगों के बीच में अवधी लोकगीतों का सर्जनात्मक उपयोग किया गया है, जिनमें ठेठ ग्रामीण संवेदना सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त हुई है।

यद्यपि इनके उपन्यासों में कथा प्रस्तुति की दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक प्रविधि ही अपनायी गयी है, और किस्सागों के रूप में उपन्यासकार की उपस्थिति का बोध हमेशा बना रहता है, पर किस्सागों की विश्वास पैदा करने वाली उपस्थिति ने इस शिल्प प्रविधि को बहुत रोचक बना दिया है। दृश्यों के निर्माण में भी उपन्यासकार ने अपनी नाटकीय सजगता का परिचय दिया है। अतः इस प्रकार से 'विरेन्द्र जैन', 'कमलाकान्त त्रिपाठी जी' ने अपने उपन्यासों में शिल्प एवं भाषा शैली का शाश्वत रूप में चित्रण प्रस्तुत किया है।

आजादी के बाद के उपन्यासकारों मे 'नागार्जुन' से लेकर 'प्रियंवद' तक दर्जनों लेखकों ने अपने उपन्यासों मे शिल्प विषयक सजगता और प्रयोगशीलता का परिचय दिया है। शिल्प को सार्थक रूप में चुनौती देने का उल्लेखनीय प्रयास 'राही मासूम रजा' ने अपने उपन्यासों में किया है। उन्होंने बिना किसी हिचक के कथाकार को पाठक का सहयात्री बना दिया। इस प्रकार 'राही जी ' ने एक झटके के साथ लम्बे समय से प्रचलित अप्रत्यक्ष कथा-प्रविधि को चुनौती देते हुए उपन्यास को संस्कृत कथा-आख्यायिका और उर्दू की दास्तानों से जोड दिया। इनके उपन्यासों के प्रारम्भ में ही पाठकों से आत्मीयता स्थापित कर बिना किसी मुसीबत के उपन्यास में शामिल हो जाते हैं और जहाँ किसी पात्र का अवलोकन बिन्दू अपर्याप्त सिद्ध होने लगता है, वहाँ वे कथा का

सूत्र संभाल लेते हैं। 'राही जी' अपने उपन्यासों में न केवल पाठक को सम्बोधित करते हैं, वरन् उसे विश्वास में लेकर बहुत सी बातों का खुलासा भी करते हैं। पाठक के साथ कथाकार की यह अनौपचारिकता खटकने की बजाय प्रीतिकर प्रतीत होती है। 'राही जी' ने बीच-बीच में अवलोकन बिन्दुओं का परिवर्तन भी किया है, जिससे कथा संसार के पात्रों के जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन स्वाभाविक रूप में होकर चलता है। इस प्रकार 'राही मासूम रजा' ने बडे सहज ढंग से अपने औपन्यासिक संसार को पाठकों के समक्ष खोलने में समर्थ होते हैं।

इस प्रविधि में एक दूसरा मोड 'मनोहर श्याम जोशी' के *'कुरू कुरू स्वाहा'* में आता है, जहाँ इसे एक साथ श्रव्य-दृश्य बनाने का प्रयास किया गया है। उपन्यासकार ने *'कुरू कुरू स्वाहा'* उपन्यास को दृश्य और संवादप्रधान गम्य बायस्कोप' कहा है और अपने पाठकों से आग्रह किया है, कि वे इसे पढते हुए देखें और सुनने का काम भी करें। एक और उल्लेखनीय बात उन्होंने यह कहीं है, कि वह पात्र जिसका जिक्र इसमें 'मनोहर श्याम जोशी', 'संज्ञा' और 'मैं' सर्वनाम से किया गया है, वह सबसे अधिक कल्पित है। वस्तुतः यहाँ भी कथाकार या नरेटर का नाटकीकृत करने का ही गुर अपनाया गया है। 'जोशी जी' को सबसे अधिक काल्पनिक मान लेने पर भी हम उनकी समानताओं को नजर अन्दाज नहीं कर सकते हैं। 'जोशी जी' ने शिल्प में नयापन लाने के लिए 'मैं' को अपना ही नाम दे दिया है। 'राही मासूम रजा' और 'मनोहर श्याम जोशी' का अन्तर यह है, कि 'राही जी' खुद को खुद के रूप में पेश करते और पाठक से सीधा सम्बन्ध स्थापित करके कहानी सुनाते हैं, जबकि 'जोशी जी' खुद का नाटकीकरण या अप्रत्यक्षीकरण कर देते हैं। वे 'मनोहर श्याम जोशी' के व्यक्तित्व को तीन टुकडों में बाँटते हैं। नरेटर के वजूद को तीन भागों में बाँटने का औचित्य कदाचित् यह है, कि उपन्यासकार तीन विभिन्न अवलोकन बिन्दुओं से अपने कथासंसार को प्रस्तुत कर सकें और पाठक भी उस कथासंसार में उसी प्रकार अपनी हिस्सेदारी निभाए। इस प्रविधि द्वारा उपन्यासकार पारम्परिक कथानक, चरित्र निर्माण, परिवेश-रचना आदि को तोडने में सफल हुआ है, पर यह सारा रचना-व्यापार एक कलाबाजी प्रतीत होता है। उपन्यासकार के पास कोई सार्थक, मानस को झकझौंरने वाला चमकदार कारण नहीं है, इस कारण इनका शिल्प भी बेमानी जैसा प्रतीत होता है।

शिल्पगत वैविध्य की दृष्टि से अगर नजर डाले तो 'अमृतलाल नागर' हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। उनके औपन्यासिक विजन का फलक जितना व्यापक

और विविधता भरा है, उतना आजादी के बाद के किसी और उपन्यासकार का नहीं है। विजन के अनुरूप ही शिल्पगत वैविध्य भी अपने सम्पूर्ण औचित्य और सर्जनात्मकता के साथ उनके उपन्यासों में विद्यमान है। *'पीढियाँ'* में भी 'नागर जी ' ने इस प्रविधि का उपयोग, उपन्यास के विजन के अनुरूप किंचित परिवर्तित रूप में किया है। इसके शुरूआती अंश में केवल दृश्यात्मक प्रविधि काम में लायी गयी है, जिसमें कोई लम्बा वर्णन या कथन नहीं है। इस उपन्यास का विजन अतीत में अवस्थित है। इसे प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने के लिए केन्द्रीय पात्र जयन्त टंडन की डायरियों, पत्रों, उसके सम्पर्क में रहे व्यक्तियों के संस्मरणों तथा युधिष्ठिर टंडन द्वारा लिए गए साक्षात्कारों की युक्ति भी काम में लायी गयी है। किन्तु इसका उपयोग अपेक्षाकृत गौण पात्र युधिष्ठिर टंडन से कराया गया है, जो स्वाधीनता आन्दोलन पर आधारित एक उपन्यास लिखता है। इस प्रकार इस उपन्यास में भी 'नागर जी' ने एक सर्जनात्मक शिल्प के द्वारा औपन्यासिक विजन को प्रभावशाली बनाने में सफलता प्राप्त की है।

'अमृतलाल नागर जी' ने *'मानस का हंस'* उपन्यास में अपने तुलसीदास विषयक विजन को वर्तमान और अतीत दोनों काल-आयाओं में अवस्थित करने का प्रयास किया है। उपन्यास खोलते ही पाठक अपने को एक अत्यन्त सजीव दृश्य के समक्ष पाता है, जो वर्तमान में अवस्थित है। इसके बाद दृश्य पर दृश्य निर्मित होते चलते हैं, जिन्हें नरेटर के अवलोकन बिन्दू से किए गए वर्णनों से जोडकर एक गतिशील दृश्य-श्रव्य श्रृंखला का निर्माण किया गया है। पर तुलसी के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विजन को प्रस्तुत करने के लिए यह प्रविधि अपर्याप्त थी। अत: इसे सक्षम बनाने के लिए 'नागर जी' ने कथा को वर्तमान और अतीत दोनों काल धरातलों पर अवस्थित कर दिया है। यहाँ तुलसी की कथा वर्तमान में आगे भी बढती है और प्रत्यग्दर्शन प्रविधि द्वारा पीछे भी लौटती है। इसके साथ ही तुलसी के निकट सम्पर्क में रहे पात्रों के अवलोकन बिन्दुओं के उपयोग द्वारा औपन्यासिक विजन को सम्पूर्णता प्रदान की गयी है। जहाँ ये अवलोकन बिन्दू भी अपर्याप्त होते हैं, वहाँ स्वयं 'गोस्वामी जी' का अपना अतीत का स्मरण और पुनरवलोकन औपन्यासिक विजन को सम्पूर्णता प्रदान करता है। कहीं-कहीं 'गोस्वामी जी' अपना स्मरण सुनाने की मन: स्थिति में भी दिखाई देते हैं, जिससे कथा में एक नया स्वाद आ जाता है। कुछ जीवन प्रसंग तुलसी की चेतना में दुबारा स्मरण होते दिखाए गए हैं। यहाँ तुलसी का मस्तिष्क एक रंगमंच बन गया है, जिस पर उनका अतीत संचित होता जान पडता है। इस विधि से 'नागर

जी' विविध अवलोकन बिन्दुओं के मिश्रण से अपने औपन्यासिक विजन को सजीव रचना बिम्ब में बदल दिया है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' में भी दलित समाज विषयक बहुआयामी विजन को प्रचलित दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक प्रविधि को प्रस्तुत करना सम्भव नहीं था। अतःउपन्यासकार के निर्गुनिया और अंशुधर शर्मा के रूप में दो प्रमुख अवलोकन बिन्दुओं की योजना की है। इस उपन्यास में नरेटर के रूप में उपन्यासकार कहीं नहीं आता। वह अपनी भूमिका अंशुधर शर्मा को सौंपकर स्वयं नेपथ्य में ही बना रहता है, जिसके फलस्वरूप कथाकथन किस्सागोई की अनघड प्रविधि से छुटकारा पाकर नाटकीय तीव्रता के प्रभाव से मुक्त हो जाता है। निर्गुनिया की कहानी की प्रस्तुति के लिए उपन्यासकार कई अवलोकन बिन्दुओं का प्रयोग करता है। कहीं निर्गुनिया अपनी कहानी अंशुधर शर्मा को सुनाती है, कहीं उसकी नोटबुक से उसी की टूटी-फूटी भाषा में, उसकी कहानी सामने आती है, कहीं पाठक अपने को अंशुधर शर्मा के मस्तिष्क में अवस्थित पाता है, जहाँ वह उनकी प्रतिक्रियाओं का सहभोक्ता बनता है, कही अंशुधर शर्मा, निर्गुनिया की नोटबुक के अस्पष्ट विवरणों का उसी से खुलासा करते हैं। इस प्रकार पाठक का अत्यन्त स्वाभाविक रूप में निर्गुनिया की कहानी प्राप्त होती है। कहानी एक साथ अतीत और वर्तमान में संचरण करती है। इस प्रविधि के भीतर दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक प्रविधि का प्रयोग तो हुआ ही है, फ्लैश बैक प्रविधि की सहायता भी ली गयी है। इसे अवलोकन बिन्दू के भीतर अवलोकन बिन्दू की योजना कहा जा सकता है.जो कहानी को ताजगी से भर देता है।

अन्त में हम कह सकते है,कि आजादी के बाद के उपन्यासों में उल्लेखनीय प्रवृति विचारों और संवेदनाओं का संसार प्रस्तुत हुआ है। 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय', 'निर्मल वर्मा', 'मनोहर श्याम जोशी', 'विनोद कुमार शुक्ल' आदि इस श्रेणी के उपन्यासकार है। इन उपन्यासकारों ने अधिकतर पात्रों की स्मृतियों, संवेदनाओं, प्रश्नों, शंकाओं और विचारों से ही अपने कथा संसार का निर्माण किया है। इनमें जहाँ 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय' और 'निर्मल वर्मा' के विचारों और संवेदनाओं का संसार समृद्ध है, वहाँ 'मनोहर श्याम जोशी.' और ' विनोद कुमार शुक्ल' के शिल्प में न कोई गहरी संवेदना है और न विचारों की ताजगी। इसी कारण 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय' और ' निर्मल वर्मा' का शिल्प अपनी अमूर्त प्रकृति के बावजूद पाठक को अपने साथ ले चलने में समर्थ हैं।

उपन्यास की प्रविधि के रूप में फैंटेसी का प्रथम उपयोग 'नागार्जुन' ने अपने पहले उपन्यास में किया था। इसके बाद 'बदीउज्जमाँ' ने *'एक चूहे की मौत'* और *'छठा तन्त्र'* में प्रतीकों और कायान्तरण के मिथक के माध्यम से आधुनिक तन्त्र या व्यवस्था के अमानवीय चेहरे को उद्घाटित किया है। 'भीमसेन त्यागी' ने *'नंगा शहर'*, 'श्रवण कुमार गोस्वामी' ने *'मेरे मरने के बाद'*, 'लक्ष्मीकान्त वर्मा' ने *'कोयला और आकृतियाँ'* तथा *'टेराकोटा'*, 'श्रवण कुमार गोस्वामी जी' ने *'जंगल तन्त्र'*, 'गिरिराज किशोर' ने *'असलाह'* में प्रतीकों और प्रतीक कथा, की प्रविधियों का उपयोग किया है। 'रमेशचन्द्र सिन्हा' ने *'सोमा चरित'* में प्रयुक्त स्वप्नचित्रात्मक कथा प्रविधियों का प्रयोग किया है। पर ये समस्त प्रयोग केवल इसलिए उल्लेखनीय हैं, कि इनमें उपन्यासकारों की शिल्पविषयक तलाश की बेचैनी दिखाई पडती है।

आजादी के बाद के हिन्दी उपन्यासकारों में उपन्यास की संरचना विषयक सजगता परिलक्षित होती है। सदी के अन्तिम दशक में शिल्प की रचना में फन्तासी के प्रति रूझान एक सामयिक चलन है। अत: इस प्रकार हमने अध्ययन किया, कि आजादी के पश्चात् सन् १९७० से सन् १९९१ के मध्य के उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प शैली में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हुए।